कम्युनिस्टों की आलोचना करने वाले गांधी आखिर लेनिन से इतने प्रभावित क्यों थे?

## महात्मा गांधी ने अपने कई पत्रों और आलेखों में रूसी क्रांति के जनक लेनिन का जिक्र करते हुए उनकी तारीफ की थी

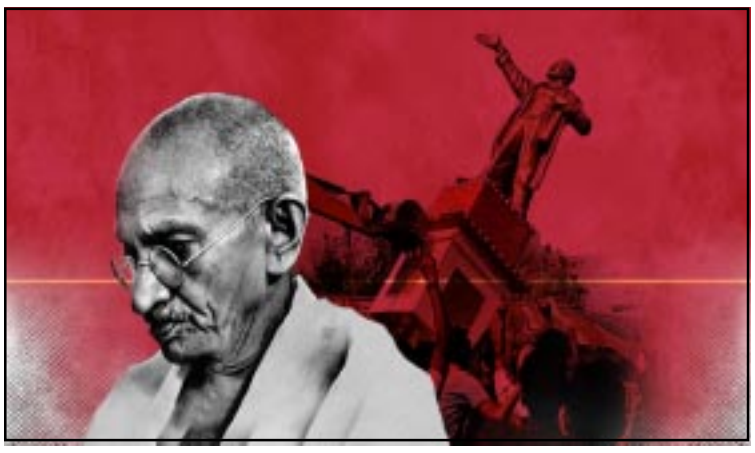

1927 के दौरान तमिलनाडु में मदुरै के दो युवक श्रीनिवास वरदन और सोमयाजुलु मद्रास घूमने आए। इनमें से एक 30 वर्ष का हिंदू था और दूसरा 25 वर्ष का मुसलमान। मद्रास के दर्शनीय स्थलों में घूमते हुए उन्होंने यहां की माउंट रोड पर ब्रिटिश जनरल जेम्स जॉर्ज स्मिथ नील की तांबे की बड़ी सी मूर्ति देखी। जनरल नील 1857 के गदर के दौरान अपनी क्रूर कार्रवाइयों के लिए प्रसिद्ध हुए थे। इन दोनों युवकों से रहा नहीं गया। उन्होंने उस मूर्ति को तोड़ना शुरू कर दिया। तांबे की मूर्ति मजबूत थी। थोड़ा बहुत ही तोड़ पाए होंगे कि सार्जेन्ट आ पहुंचा और उन्हें पकड़कर थाने ले गया। उन पर मुकदमा चला। उन्होंने न्यायाधीश के सामने पूरे जोश में कहा- 'सरकारी कानून के मुताबिक तो हम अपराधी हैं, लेकिन अपनी नज़र में नहीं।'

नील की मूर्ति तोड़े जाने के दौरान महात्मा गांधी मद्रास में ही थे। तब बहुत से नवयुवक उनसे मिलने आए और उन्होंने मूर्ति हटाने के आंदोलन में उनका सहयोग मांगा। छह और सात सितंबर, 1927 को लगातार दो दिनों तक इन युवा आंदोलनकारियों के साथ गांधी की एक लंबी बहस चली और इसके बाद गांधी ने उनको अपना नैतिक समर्थन दे दिया। इसके बाद कुछ लोगों ने महात्मा गांधी को चिट्ठी लिखकर उन्हें उनके अहिंसा-व्रत की याद दिलाई थी और कहा था कि इससे अंग्रेजों के प्रति व्यक्तिगत घृणा फैल सकती है।

गांधीजी ने इस तर्क को सैद्धांतिक रूप से स्वीकार तो किया था, लेकिन कहा था कि इन ब्रिटिश जनरलों की मूर्ति के साथ इनके सम्मान में जो शब्द लिखे गए थे, उनमें भारतीयों के साथ की गई बर्बरता का महिमामंडन होता था। साथ ही गांधीजी ने आंदोलनकारी युवकों को भी चेताया था कि विरोध का तरीका केवल 'सत्याग्रह' ही होना चाहिए. इन युवकों के लिए गांधीजी के शब्द थे - 'जिस प्रकार पौष्टिक-से-पौष्टिक दूध को जहर की छोटी सी बूंद ही पीने लायक नहीं रहने देती, उसी प्रकार थोड़ी सी अशुद्धता भी सत्याग्रह संघर्ष को आंदोलन के मूल उद्देश्य और आंदोलनकारियों के लिए खतरनाक अस्त्र बना देती है।'

लेकिन आज त्रिपुरा में लेनिन की प्रतिमा के साथ जो व्यवहार हुआ है, वह भारतीय समाज और राजनीति की कथित लोकतांत्रिक परिपक्वता की कलई खोल देता है। यह हमें उन्हीं घटनाओं की याद दिलाता है जो कुछ समय पहले अफ्रीकी देशों में महात्मा गांधी की प्रतिमा के साथ हुआ था। प्रकारांतर से इसे बामियान में बुद्ध की प्रतिमा के साथ हुए व्यवहार से जोड़कर भी देखा जा सकता है। इन सभी घटनाओं के पीछे कई प्रवृत्तिगत समानताएं देखी जा सकती हैं। पहली समानता तो प्रतिक्रियावादी कट्टरता और असहिष्णुता है। और दूसरी समानता है। इतिहास और ऐतिहासिक व्यक्तित्वों के बारे में अधकचरी जानकारी और समझ। प्रसंगवश हम लेनिन का ही उदाहरण लें। लेनिन का नाम सामने आते ही एक क्रांतिकारी की छवि सामने आती है, जिसने गरीबों का शोषण करनेवाले रूसी सामंतवाद और जारशाही के खिलाफ संघर्ष किया। इस क्रांति के दौरान और संभवत: बाद में भी हिंसा हुई. लेकिन लेनिन का निजी व्यक्तित्व और उनकी विचारधारा इस हिंसा के अनिवार्य महिमामंडन से अछूती रही. बोल्शेविक क्रांति ने आगे भी पूंजीवादी शोषण के खिलाफ आंदोलनों को एक आदर्श के रूप में प्रेरित किया।

**हालांकि भविष्य में कुछ तो यह आंदोलन अपने स्वयं के अंतर्विरोधों का शिकार हुआ और दूसरे स्टालिन जैसे परवर्ती शासकों ने हिंसा का क्रूरतम इस्तेमाल कर लेनिन की विचारधारात्मक विरासत को बहुत नुकसान पहुंचाया। इस बीच स्वयं महात्मा गांधी तक लेनिन के व्यक्तित्व से प्रभावित हुए थे। हालांकि बोल्शेविक क्रांति या साम्यवाद की विचारधारा के मानवीय पक्षों को स्वीकारते हुए भी, गांधी ने उसके अंतर्विरोधों को बहुत पहले देख लिया था।**

लेनिन के व्यक्तित्व में जिस बात ने महात्मा गांधी को सबसे अधिक प्रभावित किया था, वह थी उनकी सादगी। फ़रवरी, 1925 में एक भारतीय क्रांतिकारी ने महात्मा गांधी को चिट्ठी लिखकर पूछा था कि सिक्खों के दसवें गुरु गोबिंद सिंहजी ने भी तो अच्छे उद्देश्य के लिए युद्ध लड़ा था. क्या वह हिंसा न्यायोचित नहीं थी? क्या वाशिंगटन, गैरीबाल्डी, लेनिन और कमाल पाशा देशभक्त नहीं थे। इसके जवाब में नौ अप्रैल, 1925 के 'यंग इंडिया' में गांधीजी ने लिखा था- 'पहली बात तो यह कि गुरु गोबिंद सिंह तथा दूसरे उल्लिखित व्यक्ति गुप्त हत्या के कायल नहीं थे. ...इन देशभक्तों के पास अपने आदमी थे और एक वातावरण था। इसलिए उनकी (भारत के तत्कालीन क्रांतिकारियों की) कार्रवाइयों की तुलना गुरु गोबिंदसिंह, गैरीबाल्डी, वाशिंगटन या लेनिन से करना बहुत भ्रामक और भयावह होगा.'

**अक्टूबर, 1928 में किसी ने गांधी को पत्र लिखकर बोल्शेविज्म पर अपना दृष्टिकोण स्पष्ट करने के लिए कहा। इसके जवाब में 21 अक्टूबर, 1928 को 'नवजीवन' में गांधी ने लिखा - 'बोल्शेविज्म को जो कुछ थोड़ा-बहुत मैं समझ सका हूं वह यही कि निजी मिल्कियत किसी के पास नहीं हो— प्राचीन भाषा में कहें तो व्यक्तिगत परिग्रह न हो। यह बात यदि सभी लोग अपनी इच्छा से कर लें, तब तो इसके जैसा कल्याणकारी काम दूसरा नहीं हो सकता. परंतु बोल्शेविज्म में जबरदस्ती से काम लिया जाता है. ...मेरा दृढ़ विश्वास है कि जबरदस्ती से साधा गया यह व्यक्तिगत अपरिग्रह दीर्घकाल तक नहीं टिक सकता. ...फिर भी बोल्शेविज्म की साधना में असंख्य मनुष्यों ने आत्मबलिदान किया है। लेनिन जैसे प्रौढ़ व्यक्ति ने अपना सर्वस्व उसपर निछावर कर दिया था; ऐसा महात्याग व्यर्थ नहीं जा सकता और उस त्याग की स्तुति हमेशा की जाएगी.'** शेष पेज छह पर

# भाजपाइयों ने बुलडोजर से ढहा दी त्रिपुरा में लेनिन की मूर्ति

विश्वभर के मजदूरों और गरीबों के सबसे लोकप्रिय नेता के रूप में ख्यात लेनिन की त्रिपुरा में मूर्ति ढहाने वाले भाजपाइयों का कहना है कि हमने अपने विचार विरोधी को कर दिया नेस्तनाबूद, भाजपा महासचिव राम माधव ने ट्वीट की फोटो

**भारत माता के जयकारे के बीच नेस्तनाबूद कर दी गयी मूर्ति, बुलडोजर लगा एक मिनट में नामोनिशान खत्म**

पहली बार पूर्वोत्तर के राज्य त्रिपुरा में जीती भाजपा वहां के नागरिकों को अपने शासन काल में क्या दे पाएगी, यह तो आगे पता चलेगा लेकिन उसने एक बात साबित कर दी उसके समर्थकों में बड़ी संख्या कट्टरपंथियों की है, जो भारतीय लोकतंत्र के लिए कहीं से भी बेहतर नहीं कहा जा सकता।

याद होगा कि अफगानिस्तान में बेमियान इलाके में स्थित बुद्ध की प्रतिमा को मुस्लिम कट्टरपंथियों ने ढहा दिया था। उनका भी कहना था कि हमने अपने वैचारिक विरोधी और विदेशी आदर्श को ध्वस्त किया है।

**दक्षिण त्रिपुरा जिले के बलोनिया चौक पर मजदूर नेता लेनिन की 5 फिट की मूर्ति थी। यह मूर्ति वामपंथी सरकार ने श्रमिक जनता के गौरव के तौर पर स्थापित की थी। दुनिया भर के मजदूर लेनिन को अपने संघर्ष के मुख्य नायक के तौर पर याद रखते हैं और उनके बताए आदर्शों के अनुसार दुनिया में समाजिक बराबरी वाला समाज बनाकर समाजवाद की स्थापना करना चाहते हैं।**

पर भाजपा का मातृ संगठन आरएसएस वामपंथी विचार को विदेशी विचार बताकर खारिज करती रही है। हालांकि वह खुद हिटलर के तौर तरीकों, बातों, विचारों और पहनावे को अपनाती रही है और आज भी अपनाती है। आरएसएस वैचारिक तौर पर किसी भारतीय चिंतक के बजाए हिटलर के करीब नजर आती है और वह हिटलर को वामपंथियों के मुकाबले बेहतर मानती है।

**बलोनिया चौक पर से मूर्ति नेस्तनाबूद करने से पहले भाजपा समर्थकों ने पहले बुलडोजर के ड्राइवर को शराब पिलाई, फिर भारत माता के जयकारे वाले नारे लगाए और देखते ही देखते चौराहे पर वर्षों से खड़े लेनिन जमिंदोज हो गए। इस मामले में पुलिस का कहना है कि भाजपा की जीत के बाद से लगातार राज्य भर से हिंसा की खबरें आ रही हैं, पुलिस की कोशिश है इसे नियंत्रित किया जाए।**

## बलखाओ नहीं

बेशक स्टालिन को काला पिशाच बनाओ,
लेनिन और माओ के शवों को रौंद डालो,
मार्क्स के लिखे का नामोनिशान मिटा दो...
पर उस समझदारी का क्या करोगे
जो आत्मसात हो चुकी है मुझ में
और वज्र बन चुकी उस दलील का
तुम्हारे शोषण को जो रोज नंगा करती है...
इस भूल में मत रहना कि
तुम्हारे मेरे बीच बस मार्क्स के पोथे हैं
लेनिन माओ के प्रयोग हैं
स्टालिन की सर्वहारा शाही है
आज मेरे तुम्हारे दरमियान

तमाम दुनिया की हर धरोहर है
और अपना हिस्सा हासिल करने की
मेरी जिद है
मेरा निश्चय है
मेरा दीवानापन है
इसलिए बलखाओ नहीं

**-विकास नारायण राय**

**सम्पादक के नाम**

**- अनिल सिंह**

# संघी लोकतंत्र ऐसा जहां सब ऊपर वाले की मर्जी से!

दुनिया के सबसे बड़े एनजीओ, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ (आरएसएस) की अखिल भारतीय प्रतिनिधि सभा की सालाना बैठक इन दिनों नागपुर में चल रही है। इस तीन दिन की बैठक में उसके मुख्य कार्यपालक अधिकारी (सीईओ) या संघ की भाषा में कहें तो सर-कार्यवाह का चुनाव होना है। लेकिन हकीकत में संघ के शीर्ष नेता इस पद के लिए किसी एक का नाम पेश कर देते हैं जिसे सर्वसम्मति से स्वीकार कर लिया जाता है। इसलिए कहने को यह चुनाव है, लेकिन हकीकत में मनोनयन ही होता है।

संघ के प्रमुख या सर-संघचालक का मामला तो और भी दिलचस्प है। वर्तमान सर-संघचालक खुद ही अपना उत्तराधिकारी घोषित कर देता है जो आजीवन उस पद पर रहता है, बशर्ते खुद न छोड़ दे। इस तरह कमाल की लोकतांत्रिक पद्धति संघ में अपनाई जाती है।

**सारी दुनिया जानती है कि भाजपा से लेकर विश्व हिंदू परिषद तक उसके फ्रंटल संगठन हैं। फिर भी संघ अराजनीतिक, सामाजिक व सांस्कृतिक संगठन है। यह अलग बात है कि उसके नेता चुटकी बजाते ही भाजपा के शीर्ष पदाधिकारी बन जाते हैं, जबकि कार्यकर्ता भाजपा के चुनाव प्रचार की रीढ़ हैं।**

आरएसएस भाजपा के हाईकमान की तरह काम करता है। लोकतंत्र के मामले में कांग्रेस और भाजपा एकदम एक जैसी पार्टियां हैं। दोनों के हाईकमान में लोकतंत्र हाथी का दांत है, जबकि चबाने में ऊपर वाले की ही मर्जी चलती है।

वैसे, मुझे यह भी समझ में नहीं आता कि संघ के शीर्ष पदों के शुरू में 'सर' शब्द क्यों जुड़ा हुआ है? क्या उन्हें अंग्रेज़ों ने अपनी सेवा के बदले 'सर' की स्थाई उपाधि दे दी थी या इसका मूल स्रोत किसी पुराण या संस्कृत भाषा में है?

मेरे मन में यह भी सवाल आता है कि भारत के सार्वजनिक जीवन में इतने महत्व वाले इस संगठन के खातों का कभी ऑडिट होता है या नहीं?